दलित पैंथर का घोषणापत्र

दलितों की सत्ता : श्रमिकों की सत्ता

पैंथर की भूमिका प्रस्तुत करने की आवश्यकता

आज पैंथर के सात वर्ष (स्थापना—9 जुलाई, 1972) पूर्ण हो रहे हैं। पैंथर की ठोस क्रांतिकारी भूमिका के कारण यह आंतरिक और बाह्य विरोध के बावजूद फौलादी रूप में बढ़ती जा रही है, क्योंकि जिस समाज के सुख-दुख से वह जन्म से जुड़ी हुई है, उस समाज के क्रांतिकारी अंगों को उसने पहचान लिया है। पिछले वर्ष भर पैंथर के सदस्यों-कार्यकर्त्ताओं में विशेषतः महाराष्ट्र के सुदूर कोनों से पैंथर की भूमिका के बारे में गलतफहमी फैलाने की जान-बूझ कर कोशिश की जा रही है। पैंथर का उद्देश्य, पैंथर की संपूर्ण क्रांतिकारी लोकतांत्रिक निष्ठा, नीतियाँ आदि अनेक बातों के संबंध में गलतफहमी का प्रसार किया जा रहा है। ऐसे समय में पैंथर की भूमिका स्पष्ट करना जरूरी हो गया है। क्योंकि अब पैंथर मात्र भावनात्मक नहीं रह गई है, बल्कि उसने एक निश्चित राजनैतिक स्वरूप धारण कर लिया है। 'अपने इर्द-गिर्द की राजनीतिक परिस्थिति का गहन अध्ययन करते हुए अपने राजनैतिक व्यवहार का समीकरण बनाते रहो', डॉ. बाबा साहब अंबेडकर अपने अनुयायियों से अक्सर यह कहा करते थे। इसी कथन को आदर्श रूप में सामने रखकर उसके अनुरूप व्यवहार करना पैंथर के लिए आवश्यक ही नहीं अपरिहार्य हो गया है। नहीं तो पत्थर मानकर कछुए की पीठ पर पाँव रखेंगे और अल्प समय में ही डूब जाएँगे।

जिस हिंदू सामंतशाही ने हजारों वर्षों से दलितों को सत्ता, संपत्ति और प्रतिष्ठा आदि से वंचित रखा, आज की कांग्रेस सरकार में वही सामंतशाही बड़ी संख्या में उपस्थित है। इसलिए कांग्रेस सरकार सामाजिक परिवर्तन नहीं कर सकती। वह लोकमत से घबराकर बनाए हुए कानूनों को अमल में नहीं लगा सकेगी, क्योंकि सत्ता के सभी क्षेत्रों में सामंतशाही व्याप्त हो गई है। धर्म ने जिस वर्ग को सत्ता, संपत्ति और शक्ति रखने की अनुमति दी थी, हजारों वर्षों से स्थापित उसी वर्ग के हाथों में आज भी खेती है, कारखाने हैं, संपत्ति है, सत्ता के साधन हैं। इसी वजह से स्वतंत्रता मिलने, लोकतंत्र आने पर भी दलितों की समस्या, अस्पृश्यता टिकी हुई है। वह टिकी रहेगी,

क्योंकि अस्पृश्यता नष्ट करने के लिए जब सरकार तैयार होगी तो मात्र कानून बना देने से काम नहीं चलेगा। समूची जमीन के बँटवारे में पूर्णतया बदलाव लाना पड़ेगा। रूढ़ियों, परंपराओं, धर्मग्रंथों की बलि देनी पड़ेगी और नए विचारों को स्वीकारना पड़ेगा। ग्राम-रचना, समाज-रचना और मनो-रचना ऐसी करनी पड़ेगी जो संपूर्ण लोकतंत्र के उद्देश्य का पोषण कर सके। जिस शक्ति ने दलितों को बाँधा है और जिस शक्ति द्वारा दलितों ने स्वयं को बाँध रखा है, उन सब बातों को वस्तुनिष्ठता से, समाज विकास के क्रम में देखकर ऐतिहासिक विश्लेषण किया जाना चाहिए। जिस हिंदू सामंतशाही ने दलितों को बाँधा है, वह मुस्लिम शासन और ब्रिटिश शासन काल में जितनी क्रूर थी, आज दलितों के लिए वह उससे सौगुनी अधिक क्रूर हो सकती है। क्योंकि उत्पादन के सारे साधन, नौकरशाही, न्याय व्यवस्था, सेना, पुलिस और इन सबके पूरक सामंत, पूँजीपति, धर्म के ठेकेदार आदि सब हिंदू सामंतशाही के ही हाथों में हैं। अतः दलितों की अस्पृश्यता का प्रश्न अब मात्र मानसिक गुलामी का नहीं रहा, क्योंकि अस्पृश्यता नियमित बदलती रहने वाली सत्ता के पूरक रूप में शोषण का ही एक अत्यंत हिंस्र रूप है, जो संसार भर में प्रचलित है। आज उसकी जमीन को, मूल स्वरूप को ढूँढ़ना आवश्यक है। यदि हमें यह समझ में आ गया तो शोषण के मर्म पर निश्चित रूप से प्रहार किया जा सकेगा। हमारे दो दिग्विजयी नेता (1) ज्योतिबा फुले (2) डॉ. बाबा साहब अंबेडकर, के जीवित न रहने के बाद भी दलितों का प्रश्न मात्र जीवंत ही नहीं है बल्कि हमेशा के लिए मजबूत हो गया है। इसीलिए यदि आज हमने दलित अस्पृश्य जीवन के एक क्रांतिकारी स्वरूप का निर्धारण नहीं कर लिया तो सामाजिक क्रांति की इच्छा रखने वाला एक भी व्यक्ति भारत में जीवित नहीं बचेगा। वस्तुतः दलितों की समस्या, उनमें भी अनुसूचित जाति, जन जाति की समस्या आज व्यापक हो गई है। अब वह सिर्फ दलित, अस्पृश्य किंवा वेश-बाहर या ग्रंथ-बाहर तक ही सीमित नहीं है, बल्कि वह जिस तरह दलित है, अस्पृश्य है, उसी तरह कामगार है, खेतमजूर है, भूमिहीन है, सर्वहारा है। और उसका यह क्रांतिकारी रूप यदि हमने हिम्मत से आगे नहीं बढ़ाया तो हमारे अस्तित्व का कोई भविष्य नहीं होगा। इस क्रम में आज उसे एक पूरक और क्रांतिकारी लोकसमूह में ढलने की शक्ति पैदा करनी चाहिए, तभी वह अपने शत्रु से सही ढंग से लड़ सकेगा। यदि ऐसा नहीं हुआ तो हमें गुलामों से भी बदतर अवस्था में सड़ते रहना पड़ेगा। यह बोध हमें प्रत्येक मिनट, घंटे, दिवस, महीने और वर्षों तक लगातार जगाए रखना चाहिए, तभी हम मनुष्य कहलाने लायक रहेंगे। आंबेडकर ने हमें जानवर से मनुष्य की श्रेणी में लाया है तो इसी बात के लिए। अतः हमें प्रत्येक स्थिति शांति से, गहरा विचार करके स्वीकार करनी चाहिए। मात्र घोषणाओं और बड़ी-बड़ी बातों की भूलभुलैया में खोने से काम नहीं चलेगा। अपने आस-पास की परिस्थिति की, अपनी मंडली की गहरी चीरफाड़ करनी चाहिए। हमें गुलाम बनाने वाली वर्ण व्यवस्था

और वर्ग व्यवस्था के जो षड्यंत्र हैं, उन्हें जड़ से उखाड़ना होगा। उन्हें पोषण देने वाली, बढ़ाने वाली जमीन को निर्बीज करना होगा। 'दलित' इस संज्ञा को समाप्त करने वाले जातीय स्वरूप को ध्यान में रखना चाहिए।

सरकार ने दलितों के लिए क्या किया?

1947 में भारत स्वतंत्र हुआ। काल क्रम में शासनकर्ता वर्ग के मुखौटे बदल गए। राजा के स्थान पर राष्ट्रपति आए। प्रधान की जगह लोकप्रतिनिधि ने ले ली। वेद, स्मृति, उपनिषद्, मनुस्मृति, गीता आदि को हटाकर संविधान आ गया। कोरे कागज पर स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व की फसल पकी। 1947 से 1973 तक का लंबा समय व्यतीत हुआ। इन छब्बीस वर्षों में राष्ट्रीय आंदोलन की पूँजी के आधार पर कांग्रेस सरकार अव्याघात एकक्षत्र शासन कर रही है। चार पंचवर्षीय योजनाएँ, पाँच आम चुनाव और तीन युद्ध इस स्वतंत्रता की गद्दारपौसी में हुए। परंतु दलितों के प्रश्न, जनता की समस्याएँ आदि का सरकार ने जरा भी स्पर्श नहीं किया। येन-केन-प्रकारेण अपने हाथों में सत्ता टिकाए रखने के प्रयत्नों के अतिरिक्त इस सरकार ने अन्य किसी उद्देश्य को महत्त्व नहीं दिया। इसके विपरीत लोकराज्य का, समाजवाद का, गरीबी हटाओ आंदोलन का, हरित क्रांति आदि का नाम लेकर इस सरकार ने दलितों, भूमिहीनों, खेत-मजूरों और कामगारों के सिर पर पैर रख कर उन्हें कुचला ही है। उनके जीवन से खेलते हुए सौदेबाजी के माध्यम से उनके गिने-चुने नेतृत्व को प्रलोभनों में फँसा कर सतत उनके अस्तित्व को नष्ट करने का ही प्रयत्न किया है। धार्मिक, जातीय भेद नीति का उपयोग करके प्रजातंत्र की एकता को ही खतरे में डाल दिया है। जिस लोकतंत्र में व्यक्ति को मान-सम्मान, सत्ता-संपत्ति, प्रतिष्ठा नहीं मिलती, व्यक्ति-विकास, सामाजिक विकास करना संभव नहीं होता, देश की मिट्टी के कण-कण को जिन्होंने अपने रक्त से सींचा है उन्हें ही भूखे और दरिद्र रहना पड़ता है, पैरों तले की जमीन और सिर के ऊपर का छत छोड़ना पड़ता है, सीधे-सरल लोगों को टूटकर बिखरना पड़ता है, माँ-बहनों की इज्जत से होता खिलवाड़ देखना पड़ता है—ऐसी स्वतंत्रता को स्वतंत्रता नहीं कहा जा सकता। स्वतंत्रता आंदोलन देशी पूँजीपतियों, सामंतों और जमींदारों ने अपने नेतृत्व में अपने हितों के लिए किया था। यह जनता के, दलितों के नेतृत्व में नहीं हुआ था और ऐसा होना चाहिए था—यह अंबेडकर का मत था। स्वतंत्रता का आंदोलन जिस गाँधी नाम के हाथों में था, वह व्यक्ति ढोंगी, कुटिल, सनातनी, वर्णाभिमानी और सत्ता के ठेकेदारों का समर्थक था। स्वतंत्रता आंदोलन खंडित न हो, यह सोचकर उसने नाममात्र के लिए दलित, अस्पृश्य और जनता के प्रश्नों को आंदोलन से जोड़ा था। इसीलिए बाबा साहेब ने समय-समय पर गाँधी की भर्त्सना जनता का शत्रु, राष्ट्र का खलनायक कहकर की। बाबा साहेब अक्सर कहा करते थे—गाँधीवाद यानी सनातन धर्म, गाँधीवाद यानी रूढ़िवाद, गाँधीवाद यानी

जातीयवाद, गाँधीवाद यानी पारंपरिक धंधावाद; गाँधीवाद यानी अवतारवाद, गाँधीवाद यानी गोमातावाद, गाँधीवाद यानी मूर्तिपूजकवाद, गाँधीवाद यानी अशास्त्रीय दृष्टिकोण। अंगेजों द्वारा इनके हाथों में सत्ता सौंपने का कारण केवल यह था कि नाविकों के विद्रोह, आजाद हिंद फौज की आगे कूच, किसानों, मजदूरों और दलितों के आंदोलन के कारण उन्हें सत्ता में बने रहना मुश्किल लगने लगा था। गाँधी संप्रदाय के हाथों में स्वतंत्रता देने के पीछे यह कारण भी स्पष्ट था कि इस मंडली के हाथों में साम्राज्यवाद के हित सुरक्षित रहेंगे। अत; यह एक उधार लिया हुआ स्वातंत्र्य था। जबकि खरी स्वतंत्रता तो शत्रु से छीन कर ली जाने वाली स्वतंत्रता को ही कहते हैं, किसी के द्वारा भीख में फेंका हुआ टुकड़ा स्वतंत्रता नहीं है। घर-घर में, मन-मन में स्वतंत्रता की ज्योति जलानी पड़ती है। भारतीय स्वतंत्रता की कीमत घर-घर से नहीं ली गई। इसी वजह से दलित, श्रमिक, भूमिहीन खेत-मजूर मुक्त नहीं हुआ। निचले वर्ग तक यह किरण नहीं पहुँची, उल्टे इन सब बातों की विरासत लेकर चलने वाली सरकार ने अभी तक दलितों को उनके हक से बंचित रखा है।

अन्य दलों ने दलितों के लिए क्या किया?

पाँच चुनाव लड़ने वाले वामपंथ का भी दिवाला निकल गया है। एक चुनाव से दूसरे चुनाव तक पहुँचना ही उनका सूत्र रहा है। 1967 के चुनाव में कांग्रेस-विरोधी मोर्चे की शुरुआत इसी वामपक्ष ने की। मोर्चे में संधि के ऐसे-ऐसे रूप थे कि संप्रदायवादियों (जनसंघ-मुस्लिम लीग) से कम्युनिस्ट पक्ष ने हाथ मिलाया। कुछ राज्यों में वामपंथी मोर्चे की सरकारें भी बनीं। परंतु किसी ठोस कार्यक्रम के अभाव में उनकी कांग्रेस-विरोधी भूमिका निरुपयोगी थी। जनता के समक्ष विकल्प रखने, दलितों की समस्या हल करने, देश में गरीबों की सत्ता स्थापित करने में ये सभी वामपंथी असफल रहे। परिणामतः क्रांतिकारी समाजोन्मुख तबके का संसदीय लोकतंत्र से विश्वास उठ गया। नक्सलबाड़ी सरीखे आंदोलनों की चिंगारी पूरे भारत में फैली। 1972 के आम चुनाव में भी वही पुनरावृत्ति हुई। जनता और दलितों के सिर पर कांग्रेस का भस्मासुर बैठ गया। अकाल पड़ा, करोड़ों लोगों का जीवन उध्वस्त हुआ, जानवर मरे, कारखाने बंद हुए, मजदूर बेकार हो गए, महँगाई ने सबको अपना ग्रास बना लिया। इस देश को कांग्रेस के रूप में लगा हुआ खग्रास ग्रहण अब तक छूटा नहीं है। परंतु हमारे संसदीय वामपंथी 'सीट' की राजनीति करके कांग्रेस द्वारा मान्यता पाने में समय व्यतीत कर रहे हैं। कोई भी क्रांतिकारी बनने, जनता के प्रश्नों के बारे में विचार करने की हिम्मत नहीं करते।

इन सब वाममार्गी सत्ताविहीन पक्षों ने सामाजिक क्रांति की ओर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने वर्ग-संघर्ष के साथ अस्पृश्यता के प्रश्न को नकार कर, आर्थिक घोषणाओं के साथ-साथ सांस्कृतिक-सामाजिक वर्चस्व प्राप्त वर्ग के विरुद्ध लड़ाई नहीं छेड़ी। अस्पृश्यता और कुछ नहीं, शोषण का एक अत्यंत विषैला प्रकार है। यह विशिष्ट

शोषण व्यवस्था हिंदू सामंती पद्धति के विकास-क्रम में जन्मी है। सेना, जेल, न्याय व्यवस्था, नौकरशाही आदि शासन व्यवस्था के इन अंगों के साथ अस्पृश्यता का घेरा भी बढ़ता जा रहा है। उदात्त तत्त्वज्ञान के नाम पर, मोक्ष-निर्वाण के नाम पर भौतिक सुखों से दलितों को वंचित रख कर उनकी लूट चल रही है। औद्योगिक क्रांति के समय यंत्रों का आगमन हुआ। दलितों को यंत्र मान लिया गया। परंतु उच्चवर्ण वालों का मन सामंती ही रहा, क्योंकि यंत्र-मालिकों को सामाजिक व्यवस्था में बदलाव किए बिना ही नफा मिल रहा था। इसलिए यदि सामाजिक क्रांति द्वारा दलितों के मन भड़कें, तभी राजनैतिक क्रांति होगी। अगर ऐसा हुआ तो उच्चवर्णियों की, उच्च वर्गीयों की सत्ता छिन जाएगी। वामपक्ष की नीतियाँ सर्वस्पर्शी क्रांतिकारी तत्त्वज्ञान का प्रसार करने वाली नहीं हैं। इन दलों द्वारा दलितों के लिए सही और प्रखर लड़ाई न लड़ने के कारण ही दलित और अधिक गाफिल हो गए, इन पर अनगिनत अत्याचार हुए।

रिपब्लिकन पक्ष और दलित पैंथर का रिश्ता

1952 के आम चुनाव में पराभव के पश्चात ही डॉ. बाबा साहेब के ध्यान में आ गया था कि आज के दलित समाज की अथवा सभी समाज की समस्याएँ, चाहे सामाजिक हों या राजनैतिक, धर्म और जाति के आधार पर सुलझने वाली नहीं हैं। दलितों के आंदोलन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण, वर्गीय समझ और पूर्णतः धर्मनिरपेक्ष मानवतावाद की सहायता से ही गति आएगी। इसके लिए डॉ. बाबा साहेब शेतकरी-कामगार फेडरेशन का एक व्यापक पार्टी में रूपांतर करना चाहते थे। परंतु यह उनके जीते जी हो न पाया। उनके निर्वाण के पश्चात उनके अनुयायियों ने शे.का.फे. का 'रिपब्लिकन पार्टी' के रूप में नामांतर करके जातीय राजनीति का खेल रचाया। इस घेरे के बाहर के सभी दलितों और आर्थिक शोषण के शिकार लोगों को उन्होंने कभी अपने से नहीं जोड़ा। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि दलित सरीखे क्रांतिकारक समूह की राजनीति इस दल ने वैधानिक मार्ग से चलाई। मत, माँगें, आरक्षण, सुविधाएँ आदि के चक्कर में रिपब्लिकन दल उलझ गया। इस कारण सुदूर गाँवों में रहने वाला अस्तव्यस्त दलित समाज राजनैतिक दृष्टि से भी जहाँ था, वहीं रहा। इसका नेतृत्व समाज के मध्यमवर्ग के हाथों में आ गया। गुटबाजी, स्वार्थ और फूट की शुरुआत हुई। डॉ. बाबा साहेब की क्रांतिकारी वाणी को मौत की राह दिखाकर इस पक्ष के गद्दार नेता उनके नाम पर अपनी झोली भरने लगे। 'यह पक्ष डॉक्टर का है' कहकर अपना स्वार्थ साधते रहे। इसीलिए दादासाहेब गायकवाड़ के नेतृत्व में हुए भूमिहीनों के सत्याग्रह के अलावा इस दल ने और कोई कार्यक्रम अपने हाथ में नहीं लिया। यही वजह है कि दलितों पर अत्याचारों की भरमार हुई। डेढ़-दो वर्षों में 1,117 दलितों का कत्ल हुआ। पानी की बूँदों की भाँति घर-द्वार उजड़े, इज्जत लूटी गई, आगजनी, खूनखराबा हुआ। जिंदा रहने की समस्या के साथ-साथ शारीरिक अत्याचार बढ़ा।

रिपब्लिकन दल ने क्या किया? यशवंतराव चव्हाण जैसे धूर्त सत्ताधीश नेता द्वारा बिछाए गए जाल में फँसकर यह पक्ष समाप्त हो गया। उनका तेज खो गया, एकता नष्ट हो गई और फिर नपुंसकों की तादाद बढ़ गई। ऐसे नपुंसक नेताओं के हाथों यदि हमने भी अपना भविष्य सौंपा तो हमारा भी वही हश्र होगा। इसलिए आज हम (शर्म से) गर्दन झुकाकर यह जाहिर करते हैं कि हमारा और रिपब्लिकन दल का रिश्ता रक्त का नहीं है।

संसार के दलितों से हमारा रिश्ता

अमरीकी साम्राज्यवाद की उन्मादी कारस्तानी से आज तीसरी दुनिया यानी उत्पीड़ित देश और दलित जनता झुलस गई है। स्वयं अमरीका में मुट्ठीभर प्रतिक्रियावादी गोरे निग्रो लोगों पर जुल्म कर रहे हैं। इस जुल्म का जैसे को तैसा उत्तर देने वाले ब्लैक पैंथर आंदोलन से ब्लैक पावर, काले लोगों की सत्ता उभरी। संघर्ष की लौ से निग्रो संगठन की चिनगारियाँ फैलने लगीं। इस आंदोलन के उग्र संघर्ष से हमारा रिश्ता है। वियतनाम, कंबोडिया, अफ्रीका आदि का आदर्श हमारी आँखों के सामने है।

दलित कौन हैं?

अनुसूचित जाति, अनुसूचित जन-जाति, बौद्ध, श्रमिक जनता, कामगार, भूमिहीन गरीब किसान, घुमंतू जन-जाति, आदिवासी।

हमारे मित्र कौन हैं?

1. वर्ण व्यवस्था तोड़ने वाले क्रांतिकारी पक्ष (पार्टियाँ)। सही अर्थों में समाजवादी समाज-रचना को मानने वाले वामपंथी।

2. आर्थिक, राजनैतिक दमन नीति के शिकार अन्य सभी सामाजिक घटक।

हमारे शत्रु कौन हैं?

1. सत्ता, संपत्ति, प्रतिष्ठा।

2. जमींदार, बड़े पूँजीपति, साहूकार, साम्राज्यवाद के दलाल, नौकरशाह, पूँजीपति और उनके पिट्ठू।

3. धार्मिक, जातिवादी राजनीति करने वाली पार्टियाँ और इन सबको समर्थन देने वाली सरकार।

आज के दलितों के ज्वलंत प्रश्न

1. अन्न, पानी, वस्त्र, आवास।
2. नौकरी, जमीन, अस्पृश्यता।

3. सामाजिक, शारीरिक अन्याय।

दलित मुक्ति संघर्ष संपूर्ण क्रांति चाहता है। आधा-अधूरा बदलाव संभव नहीं है और हमें चाहिए भी नहीं। संपूर्ण क्रांतिकारी परिवर्तन ही हमारा नारा है। यद्यपि हमें सामाजिक अपमान से अपने को बाहर निकालना है। हमारा मुख्य लक्ष्य आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक रूप से प्रतिष्ठित स्थानों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना है। अब हम अल्प में संतुष्ट नहीं होंगे। हमें ब्राह्मण मोहल्ले वाला स्थान नहीं चाहिए। हमें सारे देश का राज्य चाहिए। हमारा लक्ष्य व्यक्ति नहीं, व्यवस्था है। हृदय परिवर्तन से शिक्षा द्वारा उदारमतवाद से हम पर होने वाला अन्याय, हमारा शोषण नहीं रुकेगा। हम क्रांतिकारी समूह जागृत करेंगे, संगठित करेंगे। इस प्रचंड समूह के संघर्ष से क्रांति का ज्वार आएगा। वैधानिक अर्जी और विनती, रियायत और छूट की माँगें, चुनाव, सत्याग्रह, केवल इनसे समाज नहीं बदलेगा। हमारी समाजक्रांति की संकल्पना और विद्रोह इस कागजी जहाज द्वारा वहन नहीं हो सकेंगे। वह तो मिट्टी में जमेगी, लोगों के मन में खिलेगी और फौलादी अस्तित्व लेकर सनसनाती हुई बढ़ेगी।

दलित पैंथर मात्र घोषणा नहीं है

यह हमारे प्रश्नों की ओर देखने का एक दृष्टिकोण है, उन्हें हल करने की शुरुआत है। पैंथर अस्पृश्यता, जाति-व्यवस्था, आर्थिक शोषण की पद्धतियों पर जोरदार प्रहार करेगा। हमें गुलाम बनाने के लिए इस सामाजिक और शासन व्यवस्था ने अनेक दुष्ट मार्ग बनाए हैं। हमें नीच और शूद्र ठहराया है। हमारा प्रयत्न होगा कि हम आधुनिक गुलामी की बौद्धिक दासता की शृंखला भी तोड़ें। अपने संघर्षों से हम इस गुलामी को उठाकर दूर फेंक देंगे।

हमारा कार्यक्रम

1. भारत की 80 प्रतिशत से अधिक जनता गाँवों में रहती है। इन किसानों में से 35 प्रतिशत भूमिहीन किसानों का और 23 प्रतिशत अनुसूचित जाति (जिन दलित गरीब किसानों के पास जमीन है, वह भी नाममात्र की है) का है। दलित किसानों की जमीन का प्रश्न हाथ में लेना चाहिए।

2. गाँवों में सामंती पद्धति के अवशेष अब तक बचे हुए हैं। इस पद्धति से दलितों का क्रूर उत्पीड़न होता है। जमींदार, धनी किसान आदि वर्गों को संपत्ति के साथ-साथ सामाजिक प्रतिष्ठा भी मिलने से दलितों पर हर तरह के अत्याचारों में वृद्धि हुई है। रोजमर्रा के जीवन की समस्याओं से लेकर आर्थिक समस्याओं तक यह पद्धति दलितों के गर्दन पर सवार है। इसे नष्ट करना ही होगा।

3. अधिकतम जमीन रखने के कानून द्वारा उपलब्ध जमीन का बँटवारा भूमिहीन किसानों में होना चाहिए।

4. खेत-मजूरों की मजदूरी में वृद्धि होनी चाहिए।

5. सार्वजनिक कुँओं से दलितों को पानी भरने का हक मिलना ही चाहिए।

6. गाँव के बाहर की दलित बस्तियाँ गाँव के अंदर आनी चाहिए।

7. उत्पादन के सभी साधनों पर दलितों का मालिकाना हक होना ही चाहिए।

8. निजी संपत्ति द्वारा होने वाला शोषण रोकना चाहिए। विदेशी पूँजी बिना भरपाई किए जब्त कर लेनी चाहिए।

9. सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक शोषण खत्म करके भारत में समाजवाद लाना ही चाहिए। सिर्फ नाम के लिए नहीं, सही अर्थों में राष्ट्रीयकरण करके समाजवाद की कार्यान्विति होनी चाहिए।

10. सभी दलितों को रोजगार की निश्चित गारंटी होनी ही चाहिए।

11. दलित बेकारों को तत्काल बेकारी-भत्ता दिया जाना चाहिए।

12. सभी दलितों को सभी प्रकार की शिक्षा मुफ्त में, औषधोपचार की सुविधा, आवास, सस्ता अनाज मिलना चाहिए।

13. शैक्षणिक संस्थाओं में नौकरी देते समय, जाति और धर्म जाहिर करने का नियम तत्काल रद्द किया जाना चाहिए।

14. धार्मिक संस्थाओं को दिया जाने वाला सरकारी अनुदान तत्काल बंद किया जाना चाहिए। मंदिरों की संपत्ति जब्त करके उसे दलितों के लिए उपयोग में लाना चाहिए।

15. धार्मिक-जातियादी साहित्य पर प्रतिबंध लगाना चाहिए।

16. जाति के आधार पर बनाई गई सेना की रचना रद्द की जानी चाहिए।

17. काला बाजार करने वाले जमाखोरों, साहूकारों और जनता का आर्थिक शोषण करने वालों को दंडित करना ही चाहिए।

18. जीवनोपयोगी वस्तुओं के भाव उतरने ही चाहिए।

हम शहरों, कारखानों से कामगारों का, दलितों का, भूमिहीनों का, खेतमजूरों का संगठन करेंगे और दलितों पर होने वाले अन्याय का प्रतिकार करेंगे। जनता को दुःख में डालने वाली, शोषण करने वाली जाति-व्यवस्था, वर्ण-व्यवस्था को नष्ट करके सही अर्थों में दलितों को मुक्त करेंगे, दलितों पर होने वाले अन्याय का जैसे को तैसा न्याय के आधार पर मुकाबला करेंगे। प्रचलित न्याय संस्था ने, शासनतंत्र ने हमारे सारे प्रश्नों को चकनाचूर कर दिया है। दलितों के सारे अन्यायों का निवारण करने के लिए दलितों का राज्य आना ही चाहिए। वही सही मायने में जनता का लोकतंत्र होगा। दलित पैंथर के सदस्यों, सहानुभूति रखने वालों, दलितों के अंतिम ध्येय की लड़ाई के लिए तैयार रहो।

6 और 7 सितंबर, 1979 को मुंबई में महाराष्ट्र दलित पैंथर के सर्वोच्च मंडल की बैठक हुई। इस बैठक में आज की राजनीतिक परिस्थिति में इस की नीति पर

सविस्तार चर्चा हुई। सर्वोच्च मंडल के आदेशानुसार निम्नलिखित भूमिका निश्चित की गई–

अपने देश में लोकतंत्रीय समाजवाद की कितनी ही डोंडी पीटी जाती हो, पर मूल सत्ता तो साम्राज्यवाद के दलाल, पूँजीपति, जमींदार, नौकरशाह के ही हाथों में है–इसे विस्मृत नहीं किया जा सकता। देश के पूँजीपति वर्ग की कलई अब खुल चुकी है।

पुरोगामी कहलाने वालों द्वारा किए गए भ्रष्टाचार, लोकतंत्रीय समाजवाद की प्रतारणा, स्वार्थांधता, सत्ता-स्पर्धा, फूट-नीति आदि की दुष्ट छावे आज दलित श्रमजीवी जनता के सम्मुख स्पष्ट हो गई है। राष्ट्रपति ने वर्ष के अंत में (दिसंबर 1979) मध्यावधि चुनाव करवाने की घोषणा की है। 28 महीने तक केंद्र में सत्ता चलाने वाली जनता पार्टी की सरकार गिर गई है। जनता पार्टी के शासन में 1977 से 79 के मध्य की परिस्थिति का पर्दाफाश करने में यद्यपि सफलता मिली, पर बाद में परिस्थिति पर काबू पाना मुश्किल हो गया।

पिछले दो-ढाई वर्षों के कार्यकाल में अपनी पूँजीवादी, भ्रष्ट, प्रतिगामी और दिवालिया नीतियों के कारण जनता पार्टी लोगों का विश्वास खो चुकी है।

जनता पार्टी के शासनकाल में कामगार वर्ग में अनिवार असंतोष एवं आंदोलन हुए, परंतु मालिकों के हाथ की कठपुतली बनकर जनता पार्टी ने उन्हें दबाने-कुचलने का ही कार्य किया (कानून द्वारा/पुलिस द्वारा/गुंडों द्वारा)। बीमा, बैंक, सरकारी कर्मचारियों के देशव्यापी आंदोलम हुए। देश भर में भारी संख्या में दलित, आदिवासियों और खेत-मजूरों के आंदोलन हुए। उन पर अत्याचार हुए। पुलिस और आरक्षित पुलिस के भी देशव्यापी आंदोलन हुए।

अलीगढ़, जमशेदपुर, नादियाव आदि स्थानों पर हिंदू-मुस्लिम संघर्ष एवं दंगे हुए। राजहरा, पंतनगर, कानपुर आदि ठिकानों पर सैकड़ों कामगारों को मार डाला गया। बेलछी, पंथाडा में दलितों की क्रूर हत्या की गई। महाराष्ट्र में भी जनता पार्टी से हाथ मिलाने वाले पुरोगामी दलों की सरकार के बनते ही मराठवाड़ा में दलितों की बस्तियाँ नेस्तनाबूत कर दी गई। जनता पक्ष के अंतर्गत–जनसंघ, रा.स्व. संघ की संकीर्णतावादी नीतियों के कारण, तथा जनता पार्टी और शासनतंत्र पर अपना वर्चस्व स्थापित करने की उनकी भूमिका के कारण इस पार्टी में अभी न जुड़ने वाली फूट पड़ चुकी है। जनता पार्टी निष्प्रभ हो गई है। उसके वर्ग चरित्र को हम नजर अंदाज नहीं कर सकते। इसी के साथ-साथ कांग्रेस पार्टी के भी टुकड़े-टुकड़े हो गए हैं। कांग्रेस के एक गुट का नेतृत्व करने वाली इंदिरा गाँधी और उनकी पार्टी फिर से देश के राजनीतिक मंच पर महत्त्व का स्थान पाने की कोशिश में है। अपनी सत्ता फिर से प्राप्त करने के प्रयत्न में इंदिरा गाँधी और उनकी पार्टी ने जातीयतावाद विरोधी लड़ाई में अभी-अभी अवसरवादी भूमिका ग्रहण की है। बिहार, हरियाणा आदि राज्यों

में शासन करने वाली जनता पार्टी को जीवन-दान दिया है। 1971 में आर्थिक नीतियों पर पुरोगामी, प्रतिगामी रेखा खींच कर चुनाव करवाए गए थे। इंदिराबाई जीत गईं। बाद में '75 में उन्होंने आपातस्थिति की पार्श्वभूमि पर जो बीस सूत्री कार्यक्रम घोषित किया था, उससे आकर्षित (लगभग सम्मोहित) होकर हमने इंदिरा गाँधी और उनके पक्ष का साथ दिया। वास्तव में इंदिरा गाँधी और उनकी पार्टी का चरित्र देखा जाए तो वह साम्राज्यवाद, पूँजीपति, जमींदार और नौकरशाहों के पूर्णतः अनुकूल था। इसलिए जो संगठन उनके साथ जुड़े, उनका श्रमजीवी बोध नष्ट हो गया। वे निष्प्रभ होकर बिखर गए। पैंथर संगठन को भी इस कृत्य का नुकसान झेलना पड़ा, आज यह भूलने से काम नहीं चलेगा। जनता पार्टी और इंदिरा कांग्रेस पार्टी दोनों एक ही माला के मोती हैं—यह नहीं भूलना चाहिए। आज देश भर में संकीर्ण 'जातीय' शक्तियाँ एक ओर, और एकाधिकारवादी शक्ति दूसरी ओर है। इन दोनों के विरोध में न खड़ी हो पाने वाली शक्ति तीसरी ओर है। यह तीसरी शक्ति है वामपंथी मोर्चा की शक्ति। वामपंथी आंदोलन के पचास वर्षों के इतिहास के बावजूद यह ताकत देश के लिए विकल्प देने वाली नहीं बन सकी। फिर भी आने वाले कुछ वर्षों में वाम ताकत देश में अवश्य सत्ता प्राप्त करेगी, यह निश्चित है।

पिछले दो-एक वर्ष में राजनैतिक स्थिति बदल चुकी है। पूँजीवादी राजनीति की गति अधिकाधिक फूट की ओर तो वाममार्गियों की स्वाभाविक गति अधिकाधिक एकता की ओर बढ़ रही है। इस दिशा में वामपंथियों को तेजी से स्वतः विकसित होकर, क्षमता अर्जित करते हुए, ठोस विकल्प के रूप में सामने आने का प्रयत्न करना चाहिए। जनांदोलन करने चाहिए। क्रांतिकारी, प्रति-क्रांतिकारी, पुरोगामी, उदारतावादी और दलित श्रमजीवी जनता के अंतर्विरोधों को पहचान कर दलित-श्रमिक वर्ग को एकत्रित करना चाहिए। दलित-विरोधी, श्रमिक वर्ग-विरोधी शत्रु को पहचान कर काम करना ही उचित होगा। महाराष्ट्र में दलित-श्रमिक एकता के नेतृत्व में अनेक लड़ाइयाँ लड़ी गईं। दलित पैंथर को इन नवीन परिस्थितियों को नजरअंदाज न करके, डॉ. बाबा साहेब अंबेडकर के कथनानुसार वर्णरहित-वर्गरहित समाज की निर्मिति द्वारा सही अर्थों में लोकतांत्रिक समाज-रचना को मान्यता देने वालों का शासन लाने की ओर कदम बढ़ाना चाहिए।

—दलित पैंथर की ओर से नामदेव ढसाल द्वारा जारी

अनुवाद : नीरा नाहटा